इकाई 20 समाजवाद

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 सामाजिक प्रगति, व्यक्तिवाद तथा पूँजीवाद का सिद्धान्त

20.3 समाजवाद : अर्थ तथा आरंभिक रूप

20.4 कार्ल मार्क्स तथा समाजवाद

20.5 मार्क्सवाद तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद की आलोचनाएँ

20.6 अभ्यास प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम निम्नलिखित मुद्दों पर विवेचन करेंगे:

समाजवाद की ज़रूरत किस लिए है? समाजवाद क्या है? समाजवाद किन्हीं सिद्धान्तों व विचारों के समूह के साथ-साथ एक राजनीतिक कार्यक्रम है, जो 19वीं शताब्दी के आरंभ में उदित हुआ। यह पूँजीवादी सम्पत्ति के विरुद्ध एक प्रतिरोध के रूप में उभरा। सभी समाजों में सम्पत्ति को पवित्र समझा जाता है। अपवाद है प्रारंभिक समाज, जिन्हें आदि/जनजाति/कबीलीय समाज भी कहा जाता था। पूँजीवादी समाज में, सम्पत्ति भले अपनी पवित्रता खो बैठी हो, परन्तु इसे नई प्रकार की अनुज्ञप्ति प्राप्त हो चुकी है। अब सम्पत्ति एक अहस्तान्तरीय अधिकार बन चुका है। (अहस्तान्तरण का अर्थ है जो व्यक्ति से अलग न किया जा सके, जो व्यक्ति का अपना एक अंश हो)। अहस्तान्तरणीय रूप में सम्पत्ति के अधिकार में क्या निहितार्थ हैं?

राज्य का एक मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति के आश्वासन का प्रयोजन होता है। उदारवादी सिद्धान्त में निजी सम्पत्ति का अधिकार व्यक्ति तथा उनके द्वारा सुख-सम्पन्नता प्राप्ति के लिए मुख्य समझा जाता है। जॉन लॉक (जिसे पश्चिमी समाज की उदारवादी धारणा का जनक कहा जाता है) के अनुसार, जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति का अधिकार एक प्राकृतिक अधिकार है तथा लोग राज्य बनाने के लिए जो समझौते करते हैं, वह राज्य लोगों के इस अधिकार की रक्षा करता है। लॉक के बाद तथा एडम स्मिथ, जेरमी बैन्थम तथा पूँजीवाद के आधुनिक प्रवक्ताओं के अनुसार निजी सम्पत्ति का अधिकार राजनीतिक दृ-टि से पवित्र तथा सामाजिक प्रगति के लिए एक अनिवार्य शर्त बन गया है। हमारे समय में भूमण्डलीय परिप्रेक्ष्य में पूँजीवाद तो इस अधिकार के संरक्षण हेतु और अधिक आक्रामक रूप अपनाए हुआ है।

20.2 सामाजिक प्रगति, व्यक्तिवाद तथा पूँजीवाद का सिद्धान्त

सामाजिक प्रति का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि विवेकयुक्त आत्म-हित जो एक व्यक्ति के साथ जुड़ा होता है समय बीतने के साथ सामाजिक हित में परिवर्तित हो जाता है, भले ही आत्म-हित व सामाजिक हित के बीच कुछेक अस्थायी बाधाएँ आती हैं। इसका अर्थ यह है, सामान्य

सामाजिक कल्याण व्यक्ति के हितों की महत्तम वृद्धि का फल होता है। ऐल्कज़ैन्डर पोप ने इस तथ्य को निम्नलिखित अच्छे रूप में बताया हैः

> "अतः ईश्वर अर्थात् प्रकृति ने सामान्य आधार बनाकर आत्म-स्नेह तथा सामाजिक स्नेह को एक रूप प्रदान कर दिया।"

हम सब एडम स्मिथ की 'अदृश्य हाथ' की धारणा से परिचित हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने हित की वृद्धि करने वाला ही नहीं है, अपितु एक अनन्त प्राप्तकर्त्ता तथा प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं का एक अनन्त उपभोक्ता भी है। सम्पत्ति व्यक्ति का मापदण्ड है और एक पूँजीवादी समाज में, भले किसी भी दृ-टि से कोई देखें, सभी मार्ग 'सम्पत्ति' पर ही जा मिलते हैं तथा सम्पत्ति के कारण ही व्यक्ति अपने सुख-समृद्धि को प्राप्त करता है। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की जो तस्वीर उभर कर आती है, वह एक अहंकेन्द्रित व्यक्ति की होती है, जो दूसरों तथा सबसे अलग-थलग होता है और उस स्थान पर केवल स्वयं के लिए, जिसे 'बाज़ार' कहा जाता है।

व्यक्तिवाद का यह उग्र रूप जॉन लॉक में स्प-ट दिखायी देता है जिसे उदारवाद का जनक-दार्शनिक कहा जाता है। अपने एक *कन्सरनिंग टॉलरैन्स* में लॉक लिखते हैंः राज्य नागरिक हित को प्रोत्साहित करने हेतु अस्तित्व में है और "नागरिक हित से मेरा मतलब जीवन, स्वतंत्रता, शरीर की अनुल्लंघनीयता तथा उन बाहरी वस्तुओं का व्यवस्था के पास होना है, जिसमें धन, ज़मीन, घर/आवास, फर्नीचर आदि सम्मिलत हैं।" अपनी रचना *टू ट्रीटाइज़िस ऑन गवर्नमेंट* में उन्होंने तर्क दियाः "यद्यपि भूमि सब व्यक्तियों के लिए समान है, तथापि प्रत्येक अपने आपमें सम्पत्ति रखता है। इस पर सिवाय उसक किसी और का अधिकार नहीं होता। इस कथन से स्प-ट होता है, पूँजीवादी सम्पत्ति अनन्य व्यक्ति की सम्पत्ति है तथा यह अन्यों को उस सम्पत्ति से अलग रख उस सम्पत्ति को वैधता प्रदान करती है (सामन्ती समय में सम्पत्ति पर अन्य सदस्यों की हकदारी होती थी) इस प्रकार की धारणा में व्यक्ति के सामाजिक दायित्वों की बात का कोई तुक नहीं बनता अथवा व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप से प्राप्त किसी सामाजिक व्यवस्था की उपलब्धियों में भागीदारी का भी मतलब नहीं बनता। एक जटिल सामाजिक व्यवस्था में सम्पत्ति लोगों के सामान्य प्रयासों का फल होती है, परन्तु उसकी प्राप्ति का स्वरूप सदैव अनन्य वैयक्तिक होता है। सामान्य हित की वैयक्तिक हित के साथ पहचान की जाती है; वैयक्तिक हित प्रत्येक व्यक्ति का अपने लिए होना होता है। राज्य का मुख्य कार्य उन लोगों की सम्पत्ति की पूरी रक्षा करना है, जो सम्पत्ति प्राप्त करने में सफल होते हैं।

उत्पादन के सभी साधन (भूमि, कारख़ाना, कच्चा माल, औज़ार एवं उपकरण तथा अन्य ऐसी वस्तुएँ जो जीवन की आवश्यकताओं तथा अन्य माल बनाने में काम आती हैं) ऐसे (पूँजीवादी) समाज में निजी स्वामित्व में होते हैं। यह सभी, जैसा कि इतिहास बताता है, थोड़े एवं कुछ हाथों में सिमट करके रह जाते हैं क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन संचयन की ओर बढ़ता है। समाज के लिए इसके दो महत्वपूर्ण परिणाम होते हैंः **पहला**, निवेश से सम्बन्धित सभी मामलों - क्या वस्तुएँ बनेंगी तथा कितनी मात्रा में बनेंगी- को निर्धारित करने का अधिकार उन कुछ लोगों का होता है, जो उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं, बनाई गयी सामाजिक रूप से कितनी लाभकारी है अथवा नहीं है, यह सोचने-विचारने का वि-ाय नहीं होता। निवेश लागत निर्धारित करने के पीछे मात्र यह उद्देश्य होता है कि क्या बनायी गयी वस्तु के लिए प्रभावकारी माँग पैदा की जा सकती है? दूसरे शब्दों में, निवेश से सम्बन्धित मामलों के लिए निर्णय लेने के पीछे लाभ की प्राप्ति ही एक मात्र सोच हुआ करती है। क्या बसों अर्थात् जन यातायात की अपेक्षा कीमती कारें बनाना अधिक आवश्यक है? आदि प्रश्नों का उत्तर वैयक्तिक उद्यमों द्वारा लाभ की दृ-टि से निर्णित किया जाता है। इसी प्रकार बन्दुकें अथवा बम्ब बनाना चिकित्सालय

अथवा विद्यालय बनाने से अधिक उपयुक्त है, आदि का निर्णय भी लाभ प्राप्ति की दृ-टि के अनुरूप किया जाता है। सस्ती डबलरोटी जो जनसाधारण की ज़रूरत होती है, उनके उत्पादन की बजाय कुछ लोगों के लिए महंगे आलू के चिप्स बनाए जाते हैं। इस प्रकार के पूँजी निवेश के फलस्वरूप वह वस्तुएँ बनायी जाती हैं, जिनकी आवश्यकता नहीं होती अथवा उन कुछ लोगों के लिए बनायी जाती हैं, जो खरीद सकते हैं, उन बहुत से लोगों के लिए नहीं बनायी जातीं जिनकी उन्हें आवश्यकता होती हैं।

पूँजीवादी संचयन का **दूसरा** परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की उत्पादकीय व्यवस्था में एक वर्ग श्रम करने के सामाजिक तथा कानूनी दायित्वों से मुक्त हो जाता है। यह पूँजीपतियों का वर्ग होता है। यह श्रम प्रक्रिया से बाहर रहते हुए समाज में अन्यों पर उत्पादकीय श्रम का बोझ थौंपता है। अतः समाज में हम एक बड़े अर्थात् बहुमत भाग को अपनी मज़दूरी पर जिन्दा बना देखते हैं। जो बदले में व्यक्ति की श्रम शक्ति की पुनः उत्पादकीय मूल्य द्वारा तथा श्रम की माँग व आपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। अतः हम पूँजीवादी समाज को दो भागों में विभाजित देखते हैंः एक वह भाग जिनके पास पूँजी तथा उत्पादन के साधन होते हैं तथा दूसरा वह भाग, जिनके खाली हाथ होते हैं और जो उन परिस्थितियों में जो उनके द्वारा नहीं बनायी जातीं, उन परिस्थितियों में अपना श्रम बेचने के लिए तत्पर रहते हैं। चारों और नज़र डालने पर ऐसी व्यवस्था देखी जा सकती है।

ऐसा समाज जो इस प्रकार वर्गीय आधार पर विभाजित होता है, श्रम का सम्मान-आदर नहीं करता। जो मज़दूरी करता है उनके पास कुछ नहीं होता और वह अपनी मज़दूरी के बलबूते जीवित रहता है। सम्पत्ति तथा स्वामित्व मान-सम्मान का आधार होते हैं। सभी आर्थिक विशे-ाधिकार, सामाजिक प्रभुत्व तथा प्रति-ठा उनके पास होते हैं, जिनके पास उत्पादन के साधन होते हैं अर्थात् जो पूँजीपति हैं। यह सभी सामाजिक परिसम्पत्तियाँ राजनीतिक शक्ति के साधन बन जाते हैं अथवा इनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति प्राप्त होती है। यही कारण है कि पूँजीवादी समाजों में पूँजीपतियों को शासकीय वर्ग कहा जाता है, वह वर्ग जो किसी भी पूँजीवादी समाज में शक्ति के मुख्य लक्षण निर्धारित करते हैं। सारांश में यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी वर्ग समाज की संरचना निर्धारित करता है और वह समाज, बदले में, मूल्यों, अभिरुचियों, कृतियों तथा समस्त सभ्यता को दिशा निर्देश देता है।

अतः आरंभ में समाजवाद के उदय को पूँजीवादी सम्पत्ति के विरुद्ध एक प्रतिरोध बताया गया था तो भाव मात्र सम्पत्ति से नहीं था, अपितु उत्पादन तथा सरकार की समस्त व्यवस्था से था, जिसे पूँजीवादी सम्पत्ति प्रदत करती है तथा समाज पर लागू करती है।

20.3 समाजवाद : अर्थ तथा आरंभिक रूप

विद्रोह क्या रूप लेता है? अर्थात् समाजवाद क्या है? 19वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में समाजवादी दृ-टि से जो सामान्य तत्व उभर रहे थे, उन्हें लैसज़ैक कुलाउकस्की ने *मेन करंट्स ऑफ़ मार्क्सिज़म* में इस प्रकार बताया हैः 'यह मत कि धन का अनियंत्रित केन्द्रीयकरण तथा बेलगाम प्रतिस्पर्धा अंततः बढ़ती निर्धनता तथा विपत्तियों को जन्म देंगे तथा ऐसी व्यवस्था को एक नयी व्यवस्था में परिवर्तित करना होगा, जहाँ उत्पादन तथा विनियम का संगठन दमन तथा गरीबी को समाप्त करेगा और पुनः वितरण इस प्रकार होगा कि संसार के उपहार समानता के आधार पर वितरित होंगे।'

आरंभिक समाजवाद स्प-ट रूप के सिद्धान्त न बना पाया। यह मात्र मूल्यों तथा विश्वासों का समूह के रूप में इस विचार का था कि उत्पादन के निजी स्वामित्व की व्यवस्था को बदला जाए। परन्तु इस

"किसके द्वारा बदला जाए" पर सर्वसम्मति नहीं थी। सामान्यतया यह सोचा जाने लगा कि उत्पादकीय सम्पत्ति किसी न किसी रूप में सामान्य स्वामित्व में बदली जाए तथा समाज के सामाजिक संगठन का आधार सामान्य स्वामित्व हो।

समाजवाद अपने आपमें सम्पत्ति का विरोध नहीं करता। उदाहरणतया एक फ्लैट, एक फ्रिज अथवा अपना कार चलाना समाजवाद के सार के विरुद्ध नहीं है। यह सब प्रयोग की जाने वाली अथवा प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ हैं। जब समाजवाद में सम्पत्ति के निजी स्वामित्व की बात की जाती है तो भाव उस सम्पत्ति से है जो उत्पादन करती है, लाभ देती है अथवा किराए से प्राप्त आय होती है। आरंभिक समाजवादियों ने सम्पत्ति को चोरी कहा। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन के साधनों के स्वामी मज़दूरों से धोखा करते हैं। यह मज़दूर प्रत्यक्ष उत्पादन करतें हैं तथा इनको दी जाने वाली मज़दूरी से ऊपर जो कुछ भी होता है, उसे उत्पादन के साधनों के स्वामी लाभ के रूप में हथिया लेते हैं। मज़दूरों को उनसे वंचित रखना जो उनकी बदौलत है, वह उनकी चोरी करने के समान है। चोरी का यह संचयन सम्पत्ति के रूप में हम अपने समाजों में देखते हैं। क्योंकि ऐसी सम्पत्ति चोरी का एक रूप है, इस कारण नैतिक रूप से यह स्वीकारीय नहीं है। अतः इस प्रकार की सम्पत्ति का अंत होना चाहिए तथा निजी सम्पत्ति के रूप में यह सम्पत्ति सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में बदली जानी चाहिए।

बाद के समाजवादियों ने सम्पत्ति को चोरी नहीं माना परन्तु इसे अतिरिक्त मूल्य की प्राप्ति तथा संचयन कहा, जिस अतिरिक्त मूल्य को मज़दूर पैदा करता है। मज़दूर द्वारा मूल्य पैदा करने की प्रक्रिया में श्रम प्रक्रिया निहित है। मज़दूर द्वारा बनाए गए माल को बाज़ार में विनिमत किया जाता है। पूँजीवादी प्रक्रिया में ऐसा कुछ उनके आन्तरिक व संगठनात्मक तत्वों का अंश है और इस कारण उसे कानून के रूप में वैधपूर्ण बनाया जाता है। अतः इसे फिर चोरी नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह शो-ाण का रूप अवश्य धारण कर लेती है तथा सदैव ऐसा शो-ाण बना रहता है। मानकीय दृ-टिकोण से यह वैधपूर्ण भी नहीं है तथा स्वीकारीय भी नहीं है। अतः बाद के समाजवादी पहले के समाजवादियों की भांति निजी सम्पत्ति को समाप्त करने तथा सामान्य सामाजिक स्वामित्व को लागू करने हेतु सहमत है। यह विचार कि उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व तथा उसके अंत के बाद उत्पादन के साधनों का सामान्य स्वामित्व सभी समाजवादियों को एक करता है तथा जो भी इन विचारों से सहमत होता है, उसे समाजवादी कहा जा सकता है, भले ही उनमें कितने ही मतभेद क्यों न हों। समाज के अर्थ में ऐसा सामान्य विचार शम्पीटर (*कैपीटलइज़म, सोशिलइज़म एण्ड डेमोक्रेसी*) के शब्दो में इस प्रकार बताया जा सकता है "समाजवाद समाज के उस प्रकार के गठन का नाम है, जहाँ उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण, तथा 'क्या और कैसे उत्पादन किया जाएगा' तथा 'किसे क्या प्राप्त होगा' पर निर्णय निजी-प्रशासित लोगों व कम्पनियों की बजाय सार्वजनिक सत्ता से करेंगे।"

इस प्रकार के व्यापक दायरे के अंतर्गत ऐसे मतभेद की (क) पूँजीवाद को कैसे बदला जाएगा तथा (ख) सामाजिक स्वामित्व का, वास्तव में, क्या मतलब होगा समाजवाद के विभिन्न दृ-टिकोणों को जन्म देते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न कि समाजवाद कैसे आएगा, अर्थात् कौन समाजवाद लाएगा समाजवाद से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। इन प्रश्नों पर दृ-टि डालने से हम समाजवाद की अनेक धारणाएँ देखते हैं।

1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात् लोगों द्वारा संसार को देखने से जुड़े दो मुख्य लक्षणों में परिवर्तन आए हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति ने राजनीतिक कार्यक्रम में पहला ज्ञानोदय के सिद्धान्तों में समानता (तथा बन्धुत्व) के तत्व को स्वतंत्रता के तत्व जैसा महत्व देना आरंभ कर दिया तथा उसके फलस्वरूप समतावाद जनसाधारण के लिए एक धर्मवाद का रूप धारण कर लिया गया। दूसरा, औद्योगिक क्रान्ति

के फलस्वरूप समस्त पश्चिमी यूरोप में सर्वहारा वर्ग तेज़ी से उभरने लगा - एक ऐसा वर्ग जो संख्या में बढ़ने लगा, परन्तु साथ ही कंगाली में जीवन व्यतीत करने लगा।

आरंभिक समाजवाद एक लोकप्रिय आन्दोलन के रूप में अनेक प्रकार के उत्सवीय विचारों में बढ़ने लगा। ऐसे समाजवाद के समर्थकों में रॉबर्ट ओवेन (1771-1858), सेंट साइमन (1760-1825), चार्ल्स फोरियर (1772-1837), प्रौधा (1809-1865) तथा अन्य अनेकों का नाम उल्लेखनीय है। परन्तु केवल कार्ल मार्क्स के साथ हम समाजवाद के सामान्य सिद्धान्त को ऐसे सुस्प-ट रूप में देखते हैं, जिसकी तुलना पूँजीवाद के एडम स्मिथ तथा रिकार्डो के प्रवक्ताओं के साथ की जाती है। आरंभिक समाजवादियों के विचारों व उन के समाजवाद लाने के मनसूबो में भिन्नता थी, परन्तु इन सबकी आवाज़ में सामान्यतया देखी जा सकती थी। यह सब वैयक्तिकता की तुलना में सहकारी गतिविधियों पर बल देते थे। यह सब इस तथ्य पर सहमत थे कि निजी स्वामित्व तथा बाज़ारू प्रतिस्पर्धा सामान्य हित के मार्ग में एक बुराई है और फिर उत्पादन में वृद्धि के बावजूद भी ऐसी व्यवस्था में कोई सामाजिक प्रगति नहीं होती। सामाजिक प्रगति अर्थात् समाज पर आधारित सुख/समृद्धि तभी आ सकती है, जब निजी लाभ की प्रवृत्ति का उन्मूलन हो और उनके स्थान पर पुरस्कारों की ऐसी व्यवस्था हो जो दावों के नैतिक पक्षों पर आधारित हो।

रॉबर्ट ओवेन ने 1827 में अपने *कोआपरटिव मैगज़ीन* में पहली बार शब्द *सोशलिस्ट* का प्रयोग किया था। वह अपने बलबूते पर बनी एक स्कॉटिश कॉट्न उत्पादक था, जिसका विश्वास था कि उद्योग-फैक्टरी निर्धनता तथा अनभिज्ञता से मानव जाति के लिए परिमोचन के रूप में काम कर सकती है। उन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि ऐसा संभव हो सकता है, यदि उत्पादन, प्रतिस्पर्धा की बजाय सहकारी नियमों पर किया जाए, उन्होंने स्वयं सहकारी आधार पर उत्पादन हेतु अनेक अनुभव भी किये थे। रा-ट्रीय स्तर पर तो ऐसे कार्य राज्य ही कर सकता है - उनकी ऐसी धारणा थी। उनका यह भी विश्वास था कि यदि परिस्थितियों को अनुकूल बनाया जाए, तो मानव स्वभाव में भी परिवर्तन लाया जा सकता है; परिस्थितियों के नव-निर्माण में शिक्षा की प्रभावकारी भूमिका हो सकती है। उन्होंने सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा बेरोज़गारों के लिए काम की प्राप्ति हेतु "सहयोग के ग्रामों" की स्थापना की वकालत भी की थी। उन्होंने "सहयोग" को 'प्रतिस्पर्धा' की अपेक्षा बेहत्तर इसलिए नहीं मान लिया कि उससे अधिक उत्पादन की संभावना बढ़ जाती है; उन्होंने तो सहयोग को लोगों के नैतिक सुधार का साधन भी माना था। ओवेन काम की प्राप्ति के अधिकार का समर्थन करता थे। उन्होंने 1817 में यूरोप के राज्य-अध्यक्षों को अपने आवेदनों में यह प्रार्थना कि वह अपने अपने राज्यों में उनके द्वारा प्रस्तावित सुझावों को लागू करें, ताकि मानव जाति 'पर्याप्तता' के युग में प्रवेश कर सके। उनके विचारों का ब्रिटेन के मज़दूरों पर काफी प्रभाव पड़ा, जिन्होंने उनके विचारों के संदर्भ में लौकिक आन्दोलन निर्मित करने आरंभ कर दिए तथा श्रमिक संघों को बनाने पर बल दिया, जो उनके समय में ऐसा करना ग़ैर-कानूनी समझा जाता था।

एक अलग प्रकार का समाजवादी विवरण व्यापारिक परिवार से सम्बन्धित चार्ल्स फोरियर की ओर से आता है, जिसे फ्रांसीसी क्रान्ति ने समाजवाद की ओर प्रेरित किया। काम में फिज़ूलखर्ची, अकुशलता, नीरसता तथा असमानता आदि ने फोरियर को भयावह कर दिया। उनकी मुख्य रुचि कार्य करने को सुखकर बनाना तथा व्यक्ति के स्वरूप के अनुरूप समायोजित करना था। अतः उन्हें श्रम विभाजन का सिद्धान्त इसलिए स्वीकारीय नहीं था क्योंकि यह किसी काम को अनेक प्रकार के छोटे छोटे आवृतीय भागों में बाँट देता था। रॉबर्ट ओवेन की सोच के विपरीत फोरियर को बड़े-बड़े उद्योगों की प्रभावी प्रवृत्तियों में विश्वास नहीं था। उनका मत था कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः काम हो तथा शहरी क्षेत्रों में

छोटे-छोटे दुकानदार काम करें क्योंकि समाज में ही पारिवारिक जीवन व्यतीत होता है और वहीं लोग एक-दूसरे को जान भी सकते हैं। काम वहीं पर ही विविध तथा आनन्द-योग्य होता है जहाँ प्रतिस्पर्धा न हो तथा जहाँ छोटे-छोटे प्रकार के सहकारी उत्पादन संगठित होकर काम कर सकें। वस्तुओं को कलात्मक रूप से बनाया जाए और जो जितनी देखने में अच्छी लगें, उतनी देर तक रहने वाली भी होनी चाहिए। अतः फोरियर ने बड़े पैमाने के उद्योगों का विरोध किया क्योंकि उससे, उनके अनुसार, वैयक्तिकता का डर रहता है तथा काम करने में आनन्द की अनुभूति नहीं होती। फोरियर उस पतन की ओर बढ़ने वाले शिल्पी उत्पादकों का समर्थक था, जो स्वयं काम तलाशते थे तथा स्वयं कार्य करते थे। यह प्रकृति बड़े उद्योगों में काम करने की प्रक्रिया से अलग थी, जहाँ काम का खोजना तथा काम करना दोनों एक दूसरे से अलग होते हैं।

फोरियर से भिन्न सेंट साइमन का अलग व्यक्तित्व था। सेंट साइमन विज्ञान, उद्योग तथा बड़े पैमाने के प्रशासन के समर्थक थे। इस दृ-टि से वे अपने स्वरूप में रूसोवादी थे। उनका मत न कि काम करने वाला एक सामान्य व्यक्ति अच्छा, ईमानदार तथा सदाचारी होता है। वह कुलीनों को भ्र-ट तथा विद्वानों को शाही शायद इसलिए कहा करते थे क्योंकि उनका स्वयं का सम्बन्ध कुलीन परिवारों के किन्हीं निम्नतर शाखा से था। वह लोगों के हितों का समर्थन करने वाले व्यक्ति थे। वे अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम में लड़े थे तथा फ्रांसीसी क्रान्ति के पक्के समर्थक थे। ओवेन की भाँति वे विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा उद्योग का महान प्रवक्ता थे। उन्होंने 19वीं शताब्दी के वि-ाय में भवि-यवाणी की थी कि यह शताब्दी मानव जाति के लिए एकता लाएगी तथा पुरु-ा-स्त्री को सुख-समृद्धि प्रदान करेगी। विद्वानों को घमण्डी घोि-ात करने के बावजूद साइमन ने माना कि सामाजिक पुनः निर्माण हेतु प्रकाण्ड -विद्वानों की सलाह लेनी होगी - यह विद्वानों का वर्ग होगा। यह गरीबों (जो समाज का सबसे बड़ा भाग है) के नैतिक, बौद्धिक तथा शारीरिक सुधारों के उद्देश्य से सामाजिक संस्थाओं का पुनःरूपांकन करने का काम करेंगे। इन सभी कामों में राज्य की एक केन्द्रीय भूमिका होगी। राज्य को सभी के लिए काम की तलाश करनी पड़ेगी, क्योंकि सभी काम करने के योग्य हैं तथा रोज़गार चाहते हैं। उन्हें समाजवादी बनाने तथा उनका समाजवादी बन जाने में विश्वास यह था कि समाज में केवल एक वर्ग, अर्थात् मज़दूरों के वर्ग के लिए ही स्थान होता है। मज़दूरी एक व्यक्ति द्वारा समाज में समाज के लिए किए गए काम की क्षमता के अनुरूप होनी चाहिए। जो काम नहीं करते, वे बाधक होते हैं तथा उनकी छंटनी होनी चाहिए। राज्य द्वारा शिक्षा तथा प्रचार पर नियंत्रण के माध्यम से समाज में सुस्वरता लायी जानी चाहिए।

आरंभिक समाजवादियों में प्रौधाँ का नाम लिया जाता है। वे ऐसा व्यक्ति थे जिन्होंने सम्पत्ति को स्प-टतः चोरी घोि-ात किया था तथा मार्क्स के साथ सम्पत्ति व निर्धनता के स्वरूप पर विवादात्मक तर्क-वितर्क किया । उन्होंने एक किताब लिखी थी, जिसका नाम था *फिलास्फी ऑफ़ पावर्टी* जिसके उत्तर में मार्क्स में *पावर्टी ऑफ़ फिलास्फी* लिखी थी। ऐसा करके मार्क्स ने प्रौधाँ की दार्शनिक कमज़ोरियों का ब्यौरा दिया था। प्रौधाँ का एक मुख्य चिन्तन जनसाधारण की स्वतंत्रता को महत्व देने से सम्बन्धित था। वे सोचा करते थे कि लोगों की स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा असमानता होती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रौधाँ के लिए समानता स्वतंत्रता की एक पूर्व-शर्त है और इस दृ-टि से वे लगभग वहीं बात कर रहे हैं, जो आधुनिक आमूल विचार रखने वाले विचारक करते हैं। प्रौधाँ का विश्वास था कि एक समानतावादी लोकाचार एक वर्गविहीन समाज में ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु वे वर्ग-विहीन समाज के लिए वर्ग-संघ-ार्ा के विचार को सही नहीं मानते थे। मज़दूरों द्वारा ऐच्छिक सहमति से एक वर्गविहीन समाज की स्थापना हो सकती है, प्रौधाँ कुछ इस प्रकार सोचा करते थे। वे रा-ट्रीय स्तर पर विकेन्द्रकृत श्रमिक सहकारी व्यवस्था की वकालत किया करते थे तथा यह मानते थे

कि ऐसी सहकारी समितियाँ वस्तुओं तथा सेवाओं का परस्पर आदान प्रदान करेंगी। इन समितियों के शिखर पर बनी संविधान सभाएँ राज्य के स्वरूप को परिभाि-त करेंगी। इस प्रकार वर्तमान के पूँजीवादी दमनकारी राज्य का स्वयं ही अंत हो जाएगा।

उपर्युक्त चारों प्रवक्ताओं के विचारों तथा अन्य छोटे छोटे आरंभिक समाजवादी विचारकों के विचारों से स्प-ट होता है कि आरंभिक समाजवाद कोई सैद्धान्तिक रूप न होकर पूँजीवाद के विरुद्ध उत्सववादी विचारों का मात्र एक समूह था। इनमें से अनेक किसी न किसी रूप में आज भी देखे जा सकते हैं। मार्क्स इन आरंभिक समाजवादियों का आलोचक भी था तथा प्रशसंक भी। उन्होंने उनकी आलोचना करते हुए उन्हें "स्वपनवादी" स्वरूप का समाजवादी घोि-त किया। मार्क्स ने उनमें क्या 'स्वपन' स्वरूप देखा? **प्रथम**, इन में क्रान्तिकारी कृति नहीं है; पूँजीवादी समाज में कौन सी शक्तियाँ इनमें बदलाव लाएँगी तथा इनसे किस प्रकार संघर्ा करेंगी? **दूसरा**, इन स्वपनवादी समाजवादियों के विचार अस्प-ट तथा विसरित हैं। यह स्वपनवादी-समाजवादी सर्वहारा वर्ग द्वारा वर्ग-संघर्ा के प्रति आंशकित थे। यहीं कारण है कि इन समाजवादियों ने 'ऐच्छिक सहमति', 'दिलों के परिवर्तन', 'प्रचार', 'वैयक्तिक क्रियाओं', छोटे छोटे परीक्षणों आदि द्वारा समाजवाद लाने की बात की थी। वे कहा करते थे कि श्रमिक वर्ग समाज में सबसे अधिक पीड़ित वर्ग है, परन्तु उनके लिए समस्त समाज को शान्तिपूर्वक साधनों से पूँजीवाद समाज को बदलने की ज़रूरत को समझना होगा। मार्क्स का मत था कि समाजवाद को ऐसे साधनों के माध्यम से लाना असंभव सा है। परन्तु मार्क्स इन स्वपनवादी समाजवादियों के योगदान की प्रशंसा भी करते थे। उनके अनुसार इनका मुख्य योगदान समाज के पुनः निर्माण जैसे लक्ष्यों की चर्चा करके इन स्वपनवादी समाजवादियों ने समाजवाद के पक्ष में एक वातावरण बना दिया था। *कम्युनिस्ट मैनीफैस्टो* में मार्क्स तथा ऐंग्लस ने लिखा कि इन स्वपनवादी समाजवादियों के विचारों ने 'सर्वहारा वर्ग के लिए मूल्यवान सामग्री प्रदान की'। अतः मार्क्स ने इनके विचारों की आलोचना तो की, परन्तु उनको सराहा भी। ऐसी प्रवृति बाद के मार्क्सवादियों में नहीं दिखती।

20.4 कार्ल मार्क्स तथा समाजवाद

समाजवाद के संघर्ा के इतिहास में मार्क्स का योगदान यह है कि वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने समाजवाद को एक सिद्धान्त का रूप दिया था। उनके समाजवाद का सिद्धान्त उसी प्रकार का सिद्धान्त था, जिस प्रकार रिकार्डों तथा एडम स्मिथ का पूँजीवाद का सिद्धान्त था, अर्थात् मुकाबले का सिद्धान्त। मार्क्स का समाजवाद का सिद्धान्त किसी पुरानी शैली में प्रस्तुत प्रकार का सिद्धान्त नहीं था, अपितु, एक ऐसा सिद्धान्त, जैसा कि दावा किया जाता है, जो सिद्धान्त व व्यवहार को एक रूपता प्रदान करता है, अर्थात् सिद्धान्त व्यवहार का मार्गदर्शन करेगा और व्यवहार सिद्धान्त की कमज़ोरियों में सुधार करेगा। सारांश यह है कि मार्क्स ने क्रान्तिकारी गतिविधि के लिए एक सिद्धान्त बनाने का प्रयास किया और इस हेतु ऐसे वर्ग की पहचान की, जो पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद लाने का क्रान्तिकारी कार्य सम्पन्न करेगा।

क्यों तथा कैसे मानव समाजों में परिवर्तन आते हैं? तथा मानव समाज में आने वाले भवि-य में कौन से परिवर्तन होगें? ऐसे प्रश्नों का उत्तर मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद में स्प-टत मिलता है। इस संदर्भ में मार्क्स ने बताया कि ऐतिहासिक परिवर्तन संयोगवश नहीं होते और न ही यह मात्र इच्छा का फल होते हैं; यह परिवर्तन तो द्वंद्वात्मक कानूनों द्वारा संचालित होते हैं। विरोधाभास द्वंद्ववाद का सार होता है। यह विरोधाभास तर्कसंगत नहीं होते, जैसे कि तर्कों में असंगतियाँ होती हैं

परन्तु वास्तविकता का अपना एक आन्तरिक तत्व होता है। सामाजिक वास्तविकता इस आन्तरिक विरोधाभास द्वारा अधिकांशतः समझी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, यह परस्पर वास्तविकता की विपरीताएँ वास्तव में संघर्ा को अनिवार्य बना देती हैं। दूसरे शब्दों में, समाज में परिवर्तन इस कारण होता है कि समाज में आन्तरिक विरोध विकसितीय चरणों की ओर बढ़ते है। जैसे सामंतवाद में, उसी प्रकार पूँजीवाद में, आन्तरिक विरोधाभास किसी अगले परिवर्तन की ओर बढ़ेंगे। कैसे? (मार्क्स से सम्बन्धित इन विचारों का अध्ययन 'मार्क्सवाद' की पिछली इकाई में किया गया है।)

प्रत्येक उत्पादन का तरीका (उत्पादकीय शक्तियों तथा उत्पादकीय सम्बन्धों का जोड़) दो परस्पर विरोधी वर्गों को जन्म देता है। एक वर्ग शासकीय अर्थात शो-ाण करने वाला वर्ग होता है और दूसरा पीड़ित तथा शोि-ात वर्ग होता है। दोनों वर्गों के बीच निरन्तर तनाव तथा विरोध रहता है ताकि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग से अधिक प्राप्त किया जा सके। यह वर्ग संघर्ा कहलाता है। मार्क्स तथा ऐंग्लस ने *कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो* के आरंभ के शब्दों में लिखाः "अब तक का इतिहास वर्ग संघर्ा का इतिहास है।" वे आगे लिखते हैंः "हमारा युग, पूँजीपतियों के युग का यह विशे-ा लक्षण है कि इसने वर्ग तनावों का सरलीकरण कर दिया है। समाज समस्त रूप में अधिक से अधिक दो परस्पर विरोधी गुटों में, दो महान गुटों से विभाजित होता जा रहा है; पूँजीपति तथा सर्वहारा।" अतः समाजवादी सिद्धान्त का एक छोर वर्ग संघर्ा है।

इस परिप्रेक्ष्य में मार्क्स *कैपिटल* (खण्ड I) में पूँजीवादी उत्पादकीय विधि के गहन अध्ययन के बाद इस नि-कर्ा पर पहुँचे कि विरोधाभासों के तीव्र व बढ़ते रहने से पूँजीपतियों व सर्वहारा में तनाव भी तीव्र तथा बढ़ते रहेंगे। इससे सर्वहारा में क्रान्तिकारी चेतना जागृत होगी, जो उन्हें यह शिक्षा देगी कि पूँजीपतियों के अल्पमत से शक्ति प्राप्त होने के बाद ही ऐसी परिस्थितियों का निर्माण संभव होगा, जिनके फलस्वरूप सर्वहारा का शो-ाण समाप्त हो जाएगा तथा समाज का उद्धार हो पाएगा।

यह सब कुछ स्प-ट तथा तर्कसंगत दिखायी पड़ता है। परन्तु यह श्रम है जो उत्तर की अपेक्षा करता है। विरोधाभास इतने तीव्र क्यों होंगे कि सर्वहारा को विवश होकर पूँजीवाद को उखाड़ फैंकना होगा तथा उनके स्थान पर नयी व्यवस्था बनानी पड़ेगी। मार्क्स के पास इसका उत्तर है, जिस उत्तर को मार्क्स *वैज्ञानिक* उत्तर कहता है। (भले उस उत्तर का सार देना सरल नहीं है, परन्तु ऐसा प्रयास अवश्य किया जा सकता है)।

उस उत्तर के लिए हमें मार्क्स के विश्ले-ाण के दूसरे छोर की ओर जाना होगा। इस विश्ले-ाण का सम्बन्ध वर्ग संघर्ा के भवि-य से है अर्थात् पूँजी के संचयन की प्रक्रिया तथा शो-ाण की मात्रा कैसे वर्ग संघर्ा को कैसी दिशा देती है। पूँजीवाद संचयन तथा शो-ाण की मात्रा दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। पहले, मज़दूर से अतिरिक्त मूल्य हथिया लिया जाता है; मज़दूर को मात्र मज़दूरी दी जाती है; मज़दूरी वह जो मज़दूर को जीवित रहने के लिए ज़रूरी है। दूसरे शब्दो में, जैसे बाज़ार में अन्य वस्तुएँ खरीदी जाती हैं, वैसे मज़दूर की श्रम शक्ति भी खरीदी जाती है। यह लगभग स्थापित सत्य है कि एक मज़दूर चार-पाँच घन्टों में उतनी मज़दूरी पैदा कर लेता है, जो उसे मज़दूरी के रूप में प्राप्त होती है, परन्तु यह मज़दूर तो आठ-दस घन्टे काम करता है। अतिरिक्त घन्टे काम करके एक मज़दूर जो अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है, वह अतिरिक्त मूल्य पूँजीपति द्वारा हड़प लिया जाता है। मार्क्स इसे **शो-ाण** कहता है - पूँजीवादी उत्पादकीय तरीके में निहित व्यवस्था जो पूँजीवादी सरंचना से सम्बन्धित तथा अंतर्निहित भाग बन जाती है। अतः इस प्रकार की व्यवस्था पूँजीवाद के लिए वैधानिक तथा अनिवार्य होती है। पूँजीवाद में यह प्रक्रिया उत्पादन के तकनीकी साधनों में सुधार के बाद चलती रहती

है। समय के बीतने के साथ मशीनों की कीमतों तथा अन्य निश्चित पूँजीवाद, जिसे स्थिर पूँजीवाद (constant capital) कहा जा सकता है, श्रम शक्ति के किराए पर लेने की कीमत (जिसे अस्थिर, चंचल, परिवर्तनीय पूँजीवाद कहा जा सकता है) की अपेक्षा अधिक महंगी होती जाती है। दूसरे शब्दों में, स्थिर पूँजीवाद की परिवर्तनीय पूँजी की अपेक्षा महत्व में वृद्धि होती जाती है। पूँजीवादी उत्पादकीय तरीका जैसे जैसे विकसित होता जाता है, वैसे वैसे स्थिर पूँजीवाद के महत्व में भी अपेक्षाकृत वृद्धि होती रहती है। मार्क्स कहते हैं कि इससे पूँजी का संचयन होता रहता है। दूसरे शब्दो में, पूँजी का स्वामित्व थोड़े और अधिक थोड़े हाथों में सिमट कर रह जाता है - बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। मार्क्स कहते हैं कि इसके फलस्वरूप लाभ की दर में गिरावट आ जाती है। इस क्षतिपूर्ति को पूरा करने के लिए पूँजीपति शो-ाण को और अधिक तीव्र कर देता है, अर्थात् पूँजीपति शो-ाण बढ़ाता है जिसका मज़दूर प्रतिरोध करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीपतियों की अपेक्षा मज़दूरों की दरिद्रता बढ़ जाती है। मार्क्स कहते हैं कि वर्ग संघ-ार्ा की तीव्रता बढ़ती है, जो अंततः सर्वहारा वर्ग द्वारा पूँजीपतियों को उखाड़ फैंकने में दिखायी देगी और मज़दूरों द्वारा सत्ता प्राप्त करने में नज़र आएगी। मार्क्स तथा ऐंग्लस *कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो* में लिखते हैं ''पूँजीपति फिर क्या पैदा करते हैं, वे अपने कब्र खोदने वाले पैदा करते हैं''। सर्वहारा वर्ग के शासन का पहला चरण सर्वहारा के अधिनायकवाद की स्थापना है, जो बाद में पहले समाजवाद की स्थापना करता है और उनके बाद साम्यवाद की। साम्यवाद एक ऐसा चरण होगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार काम करेगा तथा ज़रूरत के अनुसार प्राप्त करेगा; यह अपने लिए चयन करने की दुनिया होगी।

20.5 मार्क्सवाद तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद की vkykpuk,¡

इस इकाई के अंत में 19वीं शताब्दी के अंत में मार्क्सवाद के विरुद्ध द्वि-चुनौतियों पर दृ-टि डालना आवश्यक है। 20वीं शताब्दी में इसने विकासवादी अथवा लोकतान्त्रिक समाजवाद का रूप धारण कर लिया। समाजवाद से जुड़े अन्य पहलुओं, जैसे श्रेणी समाजवाद तथा श्रमिक संघवाद आदि का अध्ययन केवल अकादमी रूप का बन कर रह गया है। जब मार्क्स द्वारा बतायी गयी मज़दूरों की क्रान्ति न हुई तो एक सिद्धान्त अथवा सिद्धान्तों के समूह के रूप में मार्क्सवाद के विरुद्ध सशक्त शंकाएँ उभरने लगी। एक विद्वान जिन्होंने क्रमबद्ध ढंग से ऐसे विचारों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया वह जर्मन मार्क्सवादी एडआर्ड बर्नस्टीन थे। अपनी पुस्तक *ईवल्युशनरी सोशलिज़म* में उन्होंने समाजवादी समाज की ओर एक बिल्कुल नया मार्ग ही नहीं बताया, अपितु नयी रणनीति भी बतायी। इन संदर्भ में दूसरी घटना इस रूप में नहीं पनपी कि समाजवादी क्रान्ति नहीं हुई, जैसा कि बर्नस्टीन से जुड़ी युक्ति थी, अपितु तथ्य यह था कि कुछेक ब्रिटिश समाजवादियों में मार्क्सवाद को लेकर आंतर सन्देह थे। ऐसे ब्रिटिश समाजवादियों की धारणा थी कि समाजवाद के उद्देश्य, पद्धतियाँ तथा रणनीतियाँ सत्तावाद, तथा निरंकुश राजनीति को बढ़ावा दे सकती हैं। उन्होंने विशे-ातः मार्क्सवाद के उद्देश्यों/तरीकों जैसे सर्वहारा का अधिनायकवाद, वर्ग संघ-ार्ा, पूँजीवाद का हिंसक तरीकों से उखाड़ फैंकने के विरुद्ध अपनी आपत्ति आदि व्यक्त की। समाजवाद की प्राप्ति हेतु उन्होंने एक अलग विकल्प को एक फैबियन सोसाइटी की 1880 के दशक में स्थापना के रूप में प्रस्तुत किया। इसके समाजवाद को 'फैबियन समाजवाद' कहा जाता है। इसके प्रमुख सदस्यों में सिडनी तथा बीटरिस वैब, जी.डी. एच. कोल, बर्नार्ड शॉ, लास्की, टॉनी आदि सम्मिलित थे। यह स्मरणीय रहे कि भारतीय रा-ट्रवादी नेताओं और विशे-ातः पंडित जवाहर लाल नेहरू आदि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इन फैबियनवादियों से काफी प्रभावित हुए थे तथा स्वतंत्रता के पश्चात् 1950 के दशक के मध्य में "समाजवादी रूप का समाजवाद" का भारतीय विचार इन्हीं समाजवादियों की प्रेरणास्वरूप था।

बर्नस्टीन ने दावा किया कि मज़दूरों की मज़दूरी कम नहीं हो रही, अपितु अपेक्षाकृत बढ़ रही है। ऐसा इसलिए कि लाभ में कमी नहीं हो रही जैसा कि मार्क्स ने कहा था, होगी। परिणामस्वरूप, मज़दूरों की संभावित दरिद्रता भी नहीं बढ़ रही और इस कारण मज़दूरों द्वारा क्रान्ति नहीं आ पाएगी। बर्नस्टीन कहता है कि स्थिति मार्क्स द्वारा बतायी गयी स्थिति से भिन्न है। मज़दूरों को अधिकाधिक वेतन मिल रहा है और वे पूँजीवादी व्यवस्था में एकीकृत हो रहे हैं। अतः बर्नस्टीन ने कहा कि ज़रूरत पूँजीवादी व्यवस्था में रहकर काम करने की है तथा उनके संस्थागत दायरे में संसदों, चुनावों, मुक्त राजनीति, दल व्यवस्था, आदि को स्वीकार करते हुए मज़दूरों की स्थिति को सुधारने की आवश्यकता है। उन्होंने बताया कि मज़दूर बहुमत में हैं तथा अपने स्वस्थ संगठनों के माध्यम से वे संसद में अपने बहुमत को संभव कर सकते हैं और समाजवादी आदर्शों की ओर बढ़ सकते हैं। अतः बर्नस्टीन ने यह तर्क दिया कि इन बदली अनुकूल परिस्थितियों में क्रान्ति की ज़रूरत नहीं है। व्यवस्थित समाजवादी चिन्तन में इसे 'संशोधनवाद' तथा 'सुधारवाद' कहा जाता है और उन लोगों के लिए यह निन्दात्मक विवरण दिया जाता है जो क्रान्ति के मार्ग को छोड़ देते हैं।

बर्नस्टीन का विकासवादी समाजवाद तथा ब्रिटिश समाजवादियों का फैबियन समाजवाद अलग अलग मार्गों से मार्क्सवाद के विरुद्ध समीक्षाएँ प्रस्तुत करते हुए समान नि-क-र्ा पर पहुँचते हैं जिसे 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' का मुख्य सिद्धान्त कहा जा सकता है। लोकतान्त्रिक समाजवाद के मुख्य सिद्धान्तों में इनका उल्लेख किया जाता है। **पहला,** समाजवाद जैसा कि मार्क्स ने सोचा था अनिवार्य अथवा एक ऐतिहासिक आवश्यकता नहीं है, अपितु समाज के हित के लिए एक नैतिक ज़रूरत हैः मानवता अपनी शक्ति को आमूल समतावादी लोकाचार के दायरे में प्राप्त कर सकती है। इसके लिए लोगों को समाजवाद के लिए अपनी ओर करना पड़ेगा तथा लोगों में राजनीतिक शिक्षण के फलस्वरूप संसदीय बहुमत प्राप्त करना होगा। **दूसरा**, समाजवाद की ओर बढ़ने के लिए मात्र मज़दूर वर्ग पर्याप्त नहीं होता, अपितु समाजवाद के लिए तो सब लोगों को भूमिका निभानी पड़ेगी; संसार के लिए मज़दूर वर्ग की भूमिका निःसन्देह सामरिक सी होगी। परन्तु मध्य वर्गों में भी समाजवादी विचार लाने हेतु उनसे भी जनमत निर्णय की भूमिका की अपेक्षा की जा सकती है! **तीसरा**, समाजवाद की ओर मार्ग हिंसक व तोड़-फोड़ जैसा नहीं होगा जैसा कि मार्क्स ने सोचा था, परन्तु यह मार्ग क्रमिक स्वरूप का होगा जिसमें वैधानिक प्रयास तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था का संगठन अपनी अपनी भूमिकाएँ निभाएँगे। राज्य संचालन में लोगों की प्रभावी भागीदारी के अवसरों की समानता, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग, समानता तथा मानवीय व्यक्तित्व का विकास तथा उसे अन्य अनेक मानव समाजवाद लाने में प्रयासरत रहेंगे। **चौथा**, राज्य सामरिक महत्व की संस्था रहेगी तथा रा-ट्रीयकरण की अनेक विधियों द्वारा राज्य उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व का समाजीकरण करेगा। दूसरे शब्दों में, उद्योग तथा अन्य सार्वजनिक सेवाओं जैसे स्वास्थ्य देख-रेख, शिक्षा, बिजली, रेलवे आदि मामलों में राज्य तथा सहकारी स्वामित्व व्यवस्थाओं की भूमिका बढ़ायी जाए। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को वस्तुओं तथा सेवाओं पर समान हकदारी होगी। इस प्रकार उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व की नियोजित अर्थव्यवस्था और साथ में लोकतंत्र के प्रति आस्था एवं स्वतंत्रता मानतवा के उद्धार की ओर बढ़ने वाले मार्ग होंगे।

समाजवाद सोवियत साम्यवाद की भाँति कोई सरल एकाश्मक सिद्धान्त नहीं है। यह परिवर्तन पर परिवर्तन का तथा विभिन्न प्रकार के दृ-टिकोणों की बहुलता का प्रतिनिधित्व है, जो आपस में कुछेक मूल मान्यताओं तथा आस्थाओं पर सहमत है। एक मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक हित में अपना योगदान देने में दूसरे के मुकाबले में समान योग्यता रखता है तथा यह तभी हो सकता है, जब सब व्यक्ति सामान्य कल्याण के लिए एकजुट होकर संयुक्त रूप से काम करें। समाजवाद एक

विशे-ा प्रकार का लोकतंत्र है, जिसमें नागरिक व राजनीतिक अधिकारों से जुड़ा स्वतंत्रता का विचार आर्थिक कल्याणकारिता तथा सामाजिक स्तर से जुड़े समान दावों के साथ मिल जाता है। ऐसा तभी संभव हो सकता है जब लोग पूँजीवाद के अंतर्गत के स्वार्थ व प्रतिस्पर्धा से मुक्त हो जाते हैं। जब तक पूँजीवाद उत्पादन की कुशलता तथा बाज़ार के संतुलन के पक्ष में शो-ाण तथा मानवीय प्रति-ठा का निरादर करता रहेगा, समाजवाद के लिए ललक रहेगी। तब तक पूँजीवादी सम्पत्ति के विरुद्ध विद्रोह समाप्त नहीं होंगे।

20.6 अभ्यास प्रश्न

1. समझाइए कि समाजवाद क्या है?
2. व्यक्तिवाद तथा पूँजीवाद के संदर्भ में सामाजिक प्रगति के सिद्धान्त पर एक निबन्ध लिखिए।
3. समाजवाद के किन्हीं आरंभिक दो प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।
4. कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
5. मार्क्सवाद की आलोचनाओं की समीक्षा कीजिए।
6. लोकतान्त्रिक समाजवाद की मुख्य विशे-ताएँ बताइए।